International Journal of Humanities and Social Science Research
www.socialsciencejournal.in
ISSN: 2455-2070
Received: 31-08-2024, Accepted: 30-09-2024, Published: 15-10-2024
Volume 10, Issue 5, 2024, Page No. 58-63

समान कार्य के लिए समान वेतन की ओरः औपनिवेशिक तमिलनाडु की कपास मिलों में वेतन में विवाद का इतिहास

शिखा प्रकाश[1], एम. वी. शोभना वारियर[2]
[1] असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, कमला नेहरू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत
[2] एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, कमला नेहरू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

सारांश
प्रस्तुत शोध पत्र औपनिवेशिक काल के दौरान तमिलनाडु की कपास मिलों में श्रमिकों के मजदूरी विवादों और समान काम के लिए समान वेतन की अवधारणा के विकास की समीक्षा करता है। तमिलनाडु में कपास उद्योग ने ब्रिटिश उपनिवेशवाद के तहत एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई, जहाँ श्रमिकों की स्थिति और मजदूरी नीति पर कई विवाद और संघर्ष हुए। औपनिवेशिक शासन के तहत श्रमिकों पर न्यूनतम मजदूरी और काम करने की स्थिति का भुगतान करने का दबाव था। पुरुष और महिला श्रमिकों के बीच मजदूरी भेदभाव, जातिगत भेदभाव और विदेशी मालिकों के अधीन शोषण प्रमुख मुद्दे थे। इसके परिणामस्वरूप कपास मिलों में मजदूरी और श्रम अधिकारों को लेकर कई आंदोलन और संघर्ष हुए।
यह शोध पत्र इन आंदोलनों के ऐतिहासिक संदर्भ में समान वेतन, अवधारणा, व भूमिका की जाँच करता है। आरंभिक 20वी भाताब्दी में दक्षिण भारत की वस्त्र मिलों में महिला श्रमिकों की वेतन असमानता, कार्य क्षेत्र में उचित कार्य परिस्थितियों की मांग, श्रम संगठनों के प्रयासों, कल्याणकारी अधिनियमों की रचना का आंकलन किया गया हैं। यह इस बात का भी विश्लेषण करता है कि औपनिवेशिक शासन के तहत मजदूर वर्ग की असमान स्थिति के खिलाफ आवाज उठाने वाले आंदोलन साम्राज्यवादी शोषण और आर्थिक असमानता को चुनौती देने का प्रयास कैसे थे। इस शोध का उद्देश्य यह समझना है कि औपनिवेशिक मिलों में काम करने वाले श्रमिकों का वेतन संघर्ष किस प्रकार भारतीय श्रमिक आंदोलनों की नींव बन गया और बाद में स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ गया।

मूल शब्द: महिला श्रमिक, उद्योग, मजदूरी, आर्थिक अधिकार, संगठन, सुधार, अधिनियम

भारत में औपनिवेशिक तमिलनाडु में महिला श्रमिकों की मजदूरी और अधिकारों के संघर्ष का एक महत्त्वपूर्ण अध्ययन है। 19वीं और 20वीं शताब्दी में, कपास मिलों में काम करने वाले श्रमिकों को कम वेतन दिया जाता था, खासकर महिलाओं को, भले ही वे पुरुषों के समान ही काम कर रही थीं। इस समय, पुरुषों और महिलाओं के बीच मजदूरी में भारी असमानता थी, और श्रमिकों में असंतोष पैदा हुआ। वेतन प्रमाण पत्र की समानता से असंतुष्ट, श्रमिकों ने वेतन और बेहतर कार्य स्थितियों को सुनिश्चित करने के लिए कई बार विरोध प्रदर्शन किया और हड़ताल की।
समाजवादी सरकार और मिल असंतुष्टों ने इन दलों को एकजुट करने की कोशिश की, लेकिन विरोध प्रदर्शनों ने एकजुटता को जन्म दिया। इन आँकड़ों के अनुसार, कुछ मामलों में मजदूरी में वृद्धि हुई है, लेकिन वेतन समानता की पूर्ण प्राप्ति के लिए चिंता लंबे समय तक जारी रही। यह इतिहास दर्शाता है कि समान काम के लिए समान वेतन केवल एक आर्थिक मुद्दा नहीं था, बल्कि श्रम अधिकारों, लैंगिक समानता और सामाजिक न्याय की दिशा में एक कदम था, जो भारत में श्रम शक्ति के भविष्य के विकास का आधार बन गया।
स्त्री–पुरुष और उनके संबंधों को सामाजिक रीति–रिवाज, आचार–विचार द्वारा निर्मित और पुनर्निर्मित किया गया है। गृह सीमा रेखा के बाहर कार्य करने वाले स्त्री–पुरुष संबंध अपरिहार्य थे। समान कार्य के लिए स्त्री–पुरुष वेतन असमानता संबंधी विचारधारा की उत्पत्ति मद्रास प्रेसीडेन्सी के तमिल क्षेत्र में कपास मिलों की स्थापना के साथ–साथ हुई। युवा लड़कों और लड़कियों ने अपने अग्रजों के साथ अर्ध–कलिको के रूप में कार्यस्थल जाना शुरू कर दिया। शीघ्र ही उन्होंने व्यस्क श्रमिकों के रूप में घरों में उपस्थित जेंडर भेद को कार्यस्थल पर भी प्रतिकृत किया। स्त्रियों को निम्न वेतन वाले कार्यों के लिए अलग किया जाने लगा और उन्हें पुरुष प्रधान औद्योगिक जनबल में क्षणिक और चलायमान सदस्यों के रूप में देखा जाने लगा। लेकिन मद्रास, मधुरई और कोयम्बटूर की कपास मिलों में बड़ी संख्या में महिला श्रमिकों की उपस्थिति इस अवधारणा को गलत साबित करती है। जब महिलाएँ जनबल का हिस्सा बनीं, तो कताई और डफिंग जैसे पुरुष प्रधान विभागों में भी उन्हें नियुक्त किया गया। साथ ही यह बात स्वीकृत की गई कि महिलाओं का सामर्थ्य पुरुषों से भिन्न नहीं है। कुछ स्त्रियों ने इस कार्य में पुरुषों की तुलना में अपनी श्रेष्ठता को साबित किया। इस प्रमाण ने पुरुषों के वेतन के प्राथमिक पितृसत्तात्मक विशेषाधिकार को वैचारिक रूप से चुनौती देने का भौतिक साक्ष्य प्रदान किया।
19वीं सदी के उत्तरकाल में औपनिवेशिक राज्य के प्रयासों से श्रमिकों के कार्य घंटों, कार्य अवधि, वेतन और अवस्थाओं को परिभाषित करने वाले कायदे–कानूनों की विस्तृत व्यवस्था को निर्मित किया गया, जिसके संदर्भ में श्रमिक अधिकारों के क्षितिज का भी विस्तार हुआ। अक्सर यह तर्क दिया जाता है कि भारतीय श्रमिक औद्योगिक समाजों के श्रमिकों के समान नहीं थे। भारतीय श्रमिक अपने गाँवों से जैविक रूप से जुड़े हुए थे और उन्होंने औद्योगिक कार्य आचारशास्त्र और अनुशासन को कभी पूरी तरह से अपनाया नहीं था। कार्य की अभ्यस्त भिन्नता के तहत श्रमिकों को अज्ञानी, संघवाद में अयोग्य, समय–समय पर जाति–समुदाय हिंसा में प्रवृत्त और निराशा की स्थिति में गाँव में शरण लेने वालों के रूप में व्याख्यायित किया गया।

मजदूरी पर कानूनी और संस्थागत तंत्र

पिछले कुछ वर्षों में विकसित हुई वेतन निर्धारण प्रणाली में कानून (न्यूनतम वेतन अधिनियम), सामूहिक सौदेबाजी की संस्था, न्यायिक और मध्यस्थता संस्थाएँ, वेतन आयोग, वेतन बोर्ड और प्रचलित रीति–रिवाज और परंपराएँ शामिल हैं। वेतन या तो एकतरफा (यानी नियोक्ता या राज्य द्वारा) या द्विपक्षीय (सामूहिक सौदेबाजी) या त्रिपक्षीय (वेतन बोर्ड) तरीकों से तय किया जाता है। पिछले कुछ समय से इस प्रणाली के कानूनी ढाँचे और इसके पूरक न्यायनिर्णयन प्रक्रिया ने वेतन निर्धारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका

निभाई है। ये मुख्य रूप से द्विपक्षीय प्रणाली की कमजोरियों के कारण प्रभावी हो गए हैं। वेतन बोर्ड प्रणाली का 1960 के दशक तक अच्छा उपयोग किया जाता था, जिसके बाद इसका उपयोग मुख्य रूप से कामकाजी पत्रकारों के लिए वेतन तय करने के लिए किया जाने लगा।[1]

यद्यपि सामूहिक सौदेबाजी अतीत में अच्छी तरह से विकसित नहीं थी, लेकिन इसने कोयंबटूर, मुंबई और अहमदाबाद में सूती वस्त्र और कोलकाता में जूट उद्योग जैसे कुछ अच्छी तरह से विकसित उद्योगों और क्षेत्रों में महत्व प्राप्त कर लिया है। सरकार में कर्मचारियों की मजदूरी और सेवा शर्तें हमेशा वेतन आयोगों और विशेष आयोगों जैसे महंगाई भत्ता (डीए) आयोगों द्वारा निर्धारित की जाती रही हैं।[2] सार्वजनिक क्षेत्र के औद्योगिक खंड में मजदूरी और रोजगार की शर्तें सौदेबाजी और प्रशासनिक दिशा–निर्देशों (सार्वजनिक उद्यम ब्यूरो, बीपीई से) के माध्यम से निर्धारित की गई हैं। मजदूरी से संबंधित कानूनी ढांचा चार श्रम कानूनों द्वारा शासित है, अर्थात् मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936, न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948, बोनस भुगतान अधिनियम, 1965 और समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976।

मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936

इस अधिनियम का उद्देश्य उद्योग में काम करने वाले कुछ वर्गों के श्रमिकों को समय पर, समय पर और पूरी मजदूरी का भुगतान सुनिश्चित करना है। यह कारखानों और रेलवे प्रशासन द्वारा सीधे या उप–ठेकेदार के माध्यम से नियोजित व्यक्तियों पर लागू होता है। सरकार ने तब से इसे कई अन्य क्षेत्रों में विस्तारित किया है। श्रमिकों को देय मजदूरी के संदर्भ में अधिनियम की प्रयोज्यता समय–समय पर मूल्य मुद्रास्फीति को ध्यान में रखते हुए बढ़ाई गई है, 11 अगस्त 2005 से मजदूरी की सीमा 1,600 रुपये से बढ़ाकर 6,500 रुपये कर दी गई है। अधिनियम के तहत, नियोक्ता अपने द्वारा नियोजित व्यक्तियों और उस उद्देश्य के लिए नामित व्यक्ति द्वारा नियोजित व्यक्तियों को मजदूरी के भुगतान के लिए जिम्मेदार है। नियोक्ता अधिनियम द्वारा या उसके तहत अनुमत कटौती (जैसे जुर्माना, आवास आवास के लिए कटौती आदि) के अलावा अन्य कटौती नहीं कर सकता है। अवैध कटौती के खिलाफ कानून में कानूनी उपाय प्रदान किए गए हैं।[3]

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948

इस अधिनियम के तहत केंद्र या राज्य सरकार को अनुसूची के भाग 1 या भाग 2 में निर्दिष्ट रोजगारों में काम करने वाले श्रमिकों को देय न्यूनतम मजदूरी दर तय करने की आवश्यकता होती है और समय–समय पर राज्य सरकार द्वारा अधिसूचना के माध्यम से अनुसूची में जोड़े गए रोजगारों में काम करने वाले श्रमिकों को भी। इसमें सभी प्रकार के श्रमिक शामिल हैं, कुशल या अकुशल, मैनुअल या लिपिक, सीधे नियोजित या बाहरी कर्मचारी। सरकार को उन रोजगारों के लिए न्यूनतम मजदूरी तय करने की आवश्यकता नहीं है, जिनमें 1000 से कम कर्मचारी हैं। अधिनियम में कहा गया है कि तय की गई न्यूनतम मजदूरी दरें समयबद्ध कार्य या टुकड़ा कार्य के लिए हो सकती हैं। इसके अलावा, उपयुक्त सरकार या तो इस विषय पर सलाह देने के लिए एक समिति नियुक्त कर सकती है या अधिसूचना द्वारा प्रस्ताव प्रकाशित कर सकती है और ऐसे प्रस्तावों से प्रभावित व्यक्तियों से प्रतिक्रियाएँ आमंत्रित कर सकती है। प्रत्येक अनुसूचित रोजगार की मजदूरी की न्यूनतम दरों को तय करने या संशोधित करने के लिए इन पर विचार किया जाना है। अधिनियम और न्यायिक निर्णय यह स्पष्ट करते हैं कि सभी नियोक्ताओं को सरकार द्वारा तय की गई मजदूरी की न्यूनतम दर से कम मजदूरी का भुगतान नहीं करना चाहिए। न्यूनतम वेतन में मूल वेतन दर, जीवन निर्वाह भत्ता और रियायतों का नकद मूल्य, तीनों का संयोजन शामिल होगा। कानून में न्यूनतम वेतन का भुगतान न करने या कम भुगतान करने जैसे उल्लंघनों के खिलाफ श्रमिकों के लिए कानूनी उपाय निर्धारित किए गए हैं।[9]

समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976

संविधान का अनुच्छेद 39 राज्य को यह सुनिश्चित करने का निर्देश देता है कि समान कार्य के लिए पुरुषों और महिलाओं दोनों को समान वेतन मिले। भारत ने समान पारिश्रमिक सम्मेलन, 1951 का 25 सितम्बर 1958 को अनुसमर्थन किया। इस निर्देशक सिद्धांत को प्रभावी करने के लिए समान पारिश्रमिक अधिनियम बनाया गया था। इसके अंतर्गत आने वाले प्रत्येक नियोक्ता को समान या समान कार्य के लिए पुरुष और महिला श्रमिकों को समान पारिश्रमिक देने की आवश्यकता होती है। इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह नियोक्ता को भर्ती या पदोन्नति, प्रशिक्षण या स्थानांतरण जैसी सेवा की किसी भी शर्त के मामले में पुरुषों और महिलाओं के बीच किसी भी तरह का भेदभाव करने से रोकता है, जब तक कि इनके बारे में वैध निषेध मौजूद न हों।

तमिलनाडु में संगठित कारखाना क्षेत्र में मजदूरी

तमिलनाडु के लिए 1991–92 से 2004–05 की अवधि के लिए केंद्रीय सांख्यिकी संगठन (CSO) के उद्योगों के वार्षिक सर्वेक्षण "Annual Survey of Industries (ASI) के आँकड़ों का उपयोग किया गया है। "Annual Survey of Industries (ASI) में बिजली को छोड़कर कारखाना अधिनियम, 1948 के तहत पंजीकृत कारखाने शामिल हैं। इस प्रकार, वे विनिर्माण क्षेत्र के संगठित खंड को कवर करते हैं। 1997–98 तक अपनाई गई औद्योगिक वर्गीकरण प्रणाली राष्ट्रीय औद्योगिक वर्गीकरण "National Industrial Classification (NIC) 1987 और बाद में (NIC) 1998 थी। तुलनात्मक उद्देश्यों के लिए हमने विनिर्माण से संबंधित डेटा का उपयोग किया है (मरम्मत को छोड़कर) जिसका अर्थ राष्ट्रीय औद्योगिक वर्गीकरण (NIC) 1987 के संदर्भ में 20–39 के रूप में वर्गीकृत उद्योग समूहों को कवर करना है। माथुर और मिश्रा (2008)[5] ने उद्योगों के वार्षिक सर्वेक्षण (ASI) डेटा का उपयोग करके वास्तविक मजदूरी और वास्तविक उत्पादकता में रुझानों के अंतर–कालिक और अंतर–राज्यीय विश्लेषण का विस्तृत विश्लेषण किया है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि महिलाएँ कार्यबल का केवल एक छोटा हिस्सा थीं, 1914–1951 के दौरान अपने चरम पर, महिला श्रमिक मद्रास प्रेसीडेंसी में कार्यबल के एक चौथाई से थोड़ा अधिक नहीं थीं। हालाँकि, यह श्रम इतिहास में उनकी विशिष्ट समस्याओं की अनदेखी को उचित नहीं ठहराता है, खासकर इसलिए क्योंकि महिला श्रमिकों ने कामकाजी आबादी के अपेक्षाकृत छोटे हिस्से का गठन करते हुए भी इतिहास पर अपनी विशिष्ट छाप छोड़ी है।

जैसा कि मार्क्स ने कहा था, पुरुष इतिहास बनाते हैं, लेकिन अपनी इच्छा के अनुसार नहीं बल्कि उन ऐतिहासिक परिस्थितियों के अनुसार जिनमें वे खुद को पाते हैं।[6] जिन ऐतिहासिक परिस्थितियों में महिला श्रमिकों ने खुद को पाया, उनमें नारीत्व की प्रचलित धारणाएँ शामिल थीं, जो बढ़ते औद्योगिक कार्यबल में महिला भागीदारी के मापदंडों को परिभाषित करती थीं।

इतिहास और लिंग के बीच के संबंध की अलग–अलग व्याख्या की गई है।[7] यह एक प्रमुख तर्क रहा है कि निजी और सार्वजनिक, तथा प्रकृति और संस्कृति के बीच विभिन्न लिंग–विशिष्ट द्वैतवादों ने लिंग के आधार पर अलग–अलग सामाजिक स्थान बनाए हैं। इस प्रकार, समाज में महिलाओं की अधीनता महिला आज्ञाकारिता और प्रभुत्व की वैचारिक रचना में बदल गई है। हम इस दृष्टिकोण से सहमत हैं कि पूंजीवाद ने अपने तरीके से पितृसत्तात्मक मूल्यों को पुनर्व्यवस्थित किया है,

जिससे पूंजीवाद के तहत महिलाओं के उत्पीड़न के विशिष्ट रूप का मार्ग प्रशस्त हुआ है।

उदाहरण के लिए, फ्रांसेस्का बेटियोई द्वारा यह तर्क दिया गया है कि "यौन अधीनस्थता, तार्किक और ऐतिहासिक रूप से, उत्पादन को संगठित करने के केंद्रीय साधन के रूप में श्रम बाजार के आरोहण से पहले आती है, क्योंकि यह जैविक उत्पादन पर नियंत्रण से संबंधित है।"[8] इस प्रकार, महिलाओं के श्रम की आपूर्ति कीमत को पुरुषों की तुलना में कम स्तर पर रखना लैंगिक भूमिकाओं की सामाजिक धारणा में निहित था, और 'पारिवारिक अर्थव्यवस्था' द्वारा सक्रिय रूप से बढ़ावा दिया गया था।[9] परिवार ने लैंगिक विचारधारा के उत्पादन के स्थल के रूप में भी काम किया, जिसने कार्यस्थल पर भूमिकाओं की ऐसी परिभाषा में योगदान दिया जो महिलाओं के हितों के खिलाफ थी। उन्हें कम वेतन वाले व्यवसायों में भेज दिया गया, जिनमें मुख्य रूप से निपुणता की आवश्यकता थी, हालाँकि उन्हें अकुशल माना जाता था। आज की वैश्विक अर्थव्यवस्था में महिला कार्यबल पर बहुत सारा साहित्य कुछ व्यवसायों के 'स्त्रीकरण' के तथ्य को भी प्रस्तुत करता है, अर्थात् महिला श्रमिकों का कार्य क्रम के निचले पायदान पर संकेन्द्रण है।[10]

लिंगों के बीच कौशल–आधारित व्यवसायों के पृथक्करण का एक सीधा निहितार्थ यह है कि महिलाओं को कम वेतन मिलता है। हालाँकि, व्यावसायिक अंतर पूरी तरह से विभेदक वेतन संरचना की व्याख्या नहीं करते हैं। अक्सर ऐसा होता है कि महिलाओं को एक ही विभाग में काम करने वाले और समान काम करने वाले अपने पुरुष समकक्षों की तुलना में कम वेतन मिलता है। इसके अलावा, समान काम के लिए वेतन में भिन्नता को और भी व्यापक बनाने के लिए क्षेत्रीय कारक भूमिका निभाते हैं। इसलिए, वेतन हमारी समस्या का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। हालाँकि, महिलाओं के लिए विशेष रूप से डेटा की मितव्ययी उपलब्धता इस संबंध में एक बड़ी बाधा रही है।

लैंगिक असमानता मज़दूरी के अलावा कार्यस्थल की स्थितियों को भी प्रभावित करता है। पितृसत्तात्मक मूल्य प्रणाली ने कार्यबल में महिलाओं की न्यायसंगत भागीदारी को अन्य तरीकों से भी मुश्किल बना दिया।[11] महिला कर्मचारी को कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न का भय निरंतर मानसिक रूप से प्रताड़ित करता रहता है। इसके अलावा, उसे कुछ खास तरह के कामों में शामिल न होने देना जरूरी समझा जाता था– जैसे रात में काम करना, और उसके लिंग की कथित कमजोरियों के कारण भारी या खतरनाक काम करना। इनसे कार्यस्थल पर अन्य दमनकारी स्थितियों का बोझ और बढ़ गया। हालाँकि, मिलों में काम की खराब स्थितियों को राज्य के हस्तक्षेप से कम करने की कोशिश की गई।

कारखाना अधिनियम

1891 के भारतीय कारखाना अधिनियम के अनुसार, महिलाओं के लिए काम के घंटों की सीमा ग्यारह घंटे और बच्चों के लिए प्रतिदिन सात घंटे निर्धारित की गई थी। अधिनियम के बाद मद्रास प्रेसीडेंस में भी काम के घंटों को सीमित करने का कानून बनाने का प्रयास किया गया। इस प्रकार महिलाओं के लिए डेढ़ घंटे का आराम समय शुरू किया गया। मद्रास में इस बारे में जाँच की गई कि क्या 1891 का अधिनियम लागू था, यह पाया गया कि आम तौर पर महिलाएँ और बच्चे अनियमित थे और उन्हें ब्रेक लेने की आदत थी। लेकिन फिर भी उनकी काम करने की स्थिति उनके स्वास्थ्य के लिए उपयुक्त पाई गई। यह देखा गया कि कारखानों में महिलाओं से किसी भी तरह से अधिक काम नहीं लिया जाता था और शिकायतों का न होना संतोष का सबूत था। यह ध्यान देने योग्य बात है कि विरोध का अभाव काम खोने के डर से विरोध करने में असमर्थता या श्रमिकों के सामान्य रूप से सशक्तीकरण की कमी का परिणाम नहीं माना जाता है।

1908 में, फैक्ट्री कमीशन ने उद्योगों में महिलाओं के 'अति शोषण' को रोकने के उपायों की वकालत की। यह सुझाव दिया गया कि महिलाओं के लिए काम के घंटे युवा व्यक्तियों के समान होने चाहिए। उन्हें काम पर रखने की समय सीमा सुबह 5 बजे से शाम 7 बजे के बीच थी। पहले यह महिलाओं के लिए रात 8 बजे थी। भारतीय कारखाना आयोग की रिपोर्ट में उद्धृत महिलाओं के कार्यदिवस को एक घंटे आगे बढ़ाने के पीछे तर्क यह था कि अगर महिलाएँ पुरुषों की तुलना में थोड़ा पहले काम छोड़ दें, तो वे अपने घरेलू कामों को पूरा कर सकेंगी।[12] हालाँकि, जिनिंग मिलों में काम करने वाली महिलाओं को रात के काम पर प्रतिबंध से बाहर रखा गया था। तर्क यह था कि जिनिंग मिलों में काम करने वाली अधिकांश महिलाएँ मध्यम आयु की थीं और इसलिए, उनमें "युवा महिलाओं जैसी नैतिक समस्याएँ" नहीं थीं और इन मिलों में अधिकांश श्रमिक महिलाएँ थीं और इसलिए उन्हें काम पर लाना मुश्किल नहीं होगा। यहाँ भी, यह अवधारणा लागू थी कि रात के काम में लगी युवा महिलाओं की नैतिकता लगातार जोखिम में रहती है और इसलिए, उन्हें वृद्ध महिलाओं के विपरीत नियंत्रित करने की आवश्यकता होती है। हालाँकि आयोग ने कपास खोलने वाली महिलाओं को काम पर रखने का विरोध किया क्योंकि उन्हें लगा कि महिलाओं का पहनावा उपयुक्त नहीं है, क्योंकि इससे कपास के रोएँ फँस जाते हैं, जिससे महिलाएँ दुर्घटनाओं के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाती हैं।[13] और इस प्रकार दुर्घटनाओं का कारण कार्यस्थल पर अपर्याप्त सुरक्षा उपायों के बजाय महिलाओं के पहनावे को माना गया। इन सिफारिशों का उपयोग 1911 के फैक्ट्री एक्ट के अधिनियमन में किया गया, जिसके तहत काम के घंटे घटाकर ग्यारह कर दिए गए और महिलाओं के लिए डेढ़ घंटे का आराम समय शुरू किया गया।

महिला श्रमिकों के लिए अगला महत्त्वपूर्ण अधिनियम 1922 का अधिनियम था, जिसके तहत सरकार ने महिलाओं और बच्चों को सभी भारी कामों से बाहर रखा। 1922 के अधिनियम II में महिला श्रमिकों के लिए रात के काम पर पूर्ण प्रतिबंध का भी प्रावधान था।[14] इसने उनके लिए काम के घंटे कम करने, साथ ही अधिक क्रेच और मातृत्व भत्ते के वितरण का प्रावधान करने की भी सिफारिश की। भारी उद्योगों में इसके तत्काल गंभीर परिणाम हुए, जैसे कि महिलाओं ने पुरुष श्रमिकों की जगह ले ली, लेकिन सूती कपड़ा उद्योग में इसके अलग परिणाम हुए। मधुरई में, अधिनियम के कारण महिलाओं को रोजगार देने में आने वाली समस्याएँ 1937 की हड़ताल के दौरान सामने आईं, जब प्रबंधन ने महिलाओं के लिए रात के काम पर प्रतिबंध के मुद्दे को मुख्य कारण बताया, जिसके कारण रिंग–फ्रेम विभाग में लगभग 613 महिलाएँ बेरोजगार हो गईं।[15] यह वह समय था जब बाजार की उच्च माँग के कारण कपास मिलों में उत्पादन बढ़ा था, और धागे की उच्च माँग को पूरा करने के लिए रात के काम की शुरुआत की गई थी।

भारत में भी, यूरोप में कुछ समय बाद, बीसवीं सदी के तीसरे दशक के दौरान, विधान परिषदों में कानून बनाकर मातृत्व लाभ के भुगतान को अनिवार्य बनाने के प्रयास किए गए। मद्रास में एन. एम. जोशी, वी. जे. पटेल और वी. रामास्वामी मुदलियार जैसे समाज सुधारकों ने इसका समर्थन किया।

मद्रास प्रेसीडेंसी में प्रथम विश्व युद्ध के अंत में मजदूरी में प्रारंभिक वृद्धि के बाद, 1926 के बाद कई मिलों ने मजदूरी में कटौती शुरू की।[16] इसके बाद संरक्षणवादी नीतियों के अभाव और बाजार में जापानी सूत और वस्त्रों से कड़ी प्रतिस्पर्धा के कारण सूती वस्त्र उद्योग में मंदी आ गई।[17] एक मिल में कटौती 1926 में हुई, दूसरी सात मिलों में 1926 और 1933 के बीच

कटौती हुई। कपास मिलों में मजदूरी पर सरकारी प्रश्न का उत्तर देने वाली आधी मिलों में मजदूरी में साढ़े बारह प्रतिशत की कमी आई।[18] इस प्रकार, सितंबर 1933 और 1934 के बीच श्रमिकों की मजदूरी में भारी कटौती हुई जो बाद के वर्षों में भी जारी रही।

महिलाओं को मुख्य रूप से रीलिंग और वाइंडिंग के काम में लगाया गया था। कुछ को रिंग–फ्रेम विभाग में भी जगह मिली। हालाँकि उनके काम को कम भारी बताया गया है, लेकिन एमएलयू के ज्ञापन में बताया गया है कि चूलाई मिल के मिक्सिंग विभाग में महिलाओं ने कपास की बड़ी गांठें ढोने का बेहद भारी काम किया।[19] मदुरा टेक्सटाइल वर्कर्स यूनियन की शिकायत रजिस्टर में इस बात का मार्मिक विवरण दर्ज है कि कैसे गर्भवती महिला रीलरों को भी रीलिंग विभाग के पास एक टैंक से अपने कोटे के कॉप्स लाने के लिए मजबूर होना पड़ा। यह न केवल कठिन था बल्कि खतरनाक काम भी था क्योंकि उन्हें अपने लिए आवश्यक कॉप्स लाने के लिए नीचे कूदना पड़ता था। मदुरा टेक्सटाइल वर्कर्स यूनियन की माँग थी कि एक वाइंडिंग विभाग में महिलाओं से 9 से 12 स्पिंडल संभालने की प्रथा को खत्म किया जाए और स्पिंडल की एक इकाई हो।[20] यह कपास मिलों में काम करने वाली महिलाओं के लिए काम की जटिलता का संकेत है। चूँकि उन्हें मजदूरी का भुगतान टुकड़ा दर पर किया जाता था, इसका मतलब था कि कम वेतन वाले समय में, जब काम का बंटवारा होता था, जैसे कि अगर तीन महिलाएँ एक रील पर काम करती थीं, तो इसका मतलब था कि मजदूरी भी कम होगी, जिससे उनकी आय में कमी आएगी।[21]

बहुत पहले, 1929 में विधान परिषद ने न्यूनतम वेतन तय करने की वकालत की जिसके लिए एक जाँच समिति गठित की गई। इसने निष्कर्ष निकाला चूंकि मानकीकरण अपने आप में एक कठिन कार्य था, इसलिए न्यूनतम वेतन तय करना और भी मुश्किल था, यदि असंभव नहीं।[22] यह लेबर के कोइस्टनर की राय थी। लेकिन मद्रास में निगम कर्मचारियों जैसे श्रमिक संघों ने न्यूनतम वेतन तय करने की माँग की। कोयंबटूर मिल हड़ताल समिति ने पुरुषों के लिए 25 रुपये, महिलाओं के लिए 20 रुपये और लड़कों के लिए 15 रुपये न्यूनतम वेतन तय करने की माँग की।[23]

मधुरई में राजा मिल में, उस समय जब जीवन–यापन की बढ़ती लागत के समय में श्रमिकों की मदद के लिए महंगाई भत्ता दिया जाता था, कई महिलाओं को सामान्य रूप से आवंटित महंगाई भत्ता नहीं दिया जाता था। यूनियन ने माँग की कि रीलरों को महंगाई भत्ता की एक समान दर दी जाए और यह कार्यशाला कर्मचारियों और महिला कपास बीनने वालों को भी वितरित किया जाए। न्यायनिर्णयन में महसूस किया गया कि पूर्ण महंगाई भत्ता का दावा करने की पात्रता के लिए हैं प्रतिदिन को मानदंड के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। यह भी सुझाव दिया गया कि यदि यार्न की मात्रा और गुणवत्ता के वितरण पद्धति की अच्छी तरह से निगरानी की जाए तो यह आसान हो जाएगा।[24] इस प्रकार महंगाई भत्ता के साथ न्यूनतम उत्पादन माँग, असाइनमेंट का विनियमन जुड़ा हुआ था। और यदि कार्यभार कम था तो महिलाएँ महंगाई भत्ता से वंचित हो जाती थीं। महिलाओं का संरक्षण होने के कारण, रीलर का नुकसान मुख्य रूप से महिला श्रमिकों का नुकसान था। इस प्रकार महिलाओं के लिए उद्योग में कम वेतन की स्थिति के अलावा, उद्योग में संकट के समय कम वजन, कम उत्पादन और नौकरी साझा करने जैसे कारकों से कमाई में नुकसान हुआ।

कार्यस्थल पर स्थितियाँ

तीस के दशक तक कई कर्मचारी संघों ने कर्मचारियों के हितों का प्रतिनिधित्व किया। कोयंबटूर वर्कर्स यूनियन, कोयंबटूर डिस्ट्रिक्ट टेक्सटाइल वर्कर्स यूनियन, कोयंबटूर मिल वर्कर्स यूनियन, मद्रास वर्कर्स यूनियन, मद्रास वर्कर्स यूनियन, मदुरा वर्कर्स यूनियन और दशक के अंत तक मदुरा टेक्सटाइल वर्कर्स यूनियन बन गई। इस मोड़ पर, काम के घंटों, कार्यस्थल पर सुविधाओं के साथ–साथ मजदूरी से संबंधित बदलावों के मामले में बेहतर कामकाजी परिस्थितियों के लिए प्रतिनिधित्व किया गया।[25] कुछ रियायतें प्राप्त की गईं जैसे कि रात के कामगारों को चाय परोसना, कॉटन मिक्सिंग डिपार्टमेंट में ह्यूमिडिफायर लगाना, क्रेच, टिफिन रूम, मातृत्व लाभ का वितरण।[26] हालाँकि, विभिन्न मिलों में कार्यान्वयन एक समान नहीं था। कई प्रबंधन मातृत्व लाभ का भुगतान करने, क्रेच स्थापित करने या यहाँ तक कि स्वच्छ पेयजल उपलब्ध कराने से भी बचते रहे।[27]

मिल में काम करने से मजदूरों के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा असर पड़ता था। लंबे समय तक काम करना खास तौर पर थका देने वाला होता था। ज्यादातर मिलों में नमी की मात्रा ज्यादा होने से बचने के लिए कोई व्यवस्था नहीं थी। इसके अलावा, रोशनी और हवा की व्यवस्था भी खराब थी।[28] ऐसी परिस्थितियों में, बिजली के स्पिंडल को देखना असहनीय रूप से थका देने वाला साबित हुआ। वास्तव में, पोन्नगरम पर पुडू मैप्पिथन की एक कहानी में, महिलाओं के बालों पर रूई के गुच्छे को आसानी से भूरे बालों के लिए गलत समझा जाता है।[29] बालों में यह धूल मजदूरों में कई तरह की स्वास्थ्य समस्याओं का कारण बताई गई थी। यद्यपि मद्रास में 1936 तक कृत्रिम आर्द्रता नियंत्रण का प्रावधान किया गया था, लेकिन जाँच की गई 68 मिलों में से केवल सत्रह ने 1942 तक कोई यांत्रिक उपकरण पेश किया था।[30] इसका मतलब यह था कि 51 मिलों में श्रमिकों को थकान, बेचौनी, कमजोरी जैसे लक्षणों का सामना करना पड़ा, जिससे कभी–कभी मानसिक विकार भी हो जाते थे। इस प्रकार, आम तौर पर श्रमिकों के स्वास्थ्य की परवाह नहीं की जाती थी, जबकि कारखानों की स्थिति पर नजर रखने के लिए एक संपूर्ण निरीक्षणालय मौजूद था– मिल प्रौद्योगिकी अपने प्रारंभिक स्तर पर ही रही।

मिल में काम करने वाली महिलाओं पर मिस्त्री का वर्चस्व कई तरह से प्रकट होता था। बच्चे के जन्म के बाद छुट्टी से लौटने पर वे मिस्त्री के आदेश पर ही पुनः प्रवेश पा सकती थीं। कभी–कभी वे अपनी नौकरी वापस पाने के लिए मिस्त्री को 4–5 रुपए की रिश्वत देती थीं।[31] इसके अलावा, काम करते समय अगर उनका काम औसत से कमतर माना जाता तो वे महिलाओं को गालियाँ देते और उन पर अनैतिक होने का आरोप लगाते।[32] मिस्त्री द्वारा 'नैतिक महिलाओं' के रूप में उनकी सामाजिक स्थिति पर सवाल उठाने से इन महिलाओं के मन में मनोवैज्ञानिक रूप से असुरक्षा की भावना पैदा होती थी। इस तरह का उत्पीड़न शारीरिक दंड के अलावा धूप में खड़ा करने जैसी सजा के अलावा था। इस तरह के अनुशासन का एक उदाहरण कोयंबटूर कॉटन मिल की महिला श्रमिकों के एक वर्ग का मामला है, जिन्हें केवल इसलिए धूप में खड़ा रहने को मजबूर किया गया क्योंकि उन्होंने यह माँग करने की हिम्मत दिखाई थी कि उन्हें बकाया वेतन की पुष्टि के लिए लेखा बही का निरीक्षण करने की अनुमति दी जाए।[33]

सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन

समान कार्य के लिए समान वेतन के सिद्धांत पर आधारित विवादों का इतिहास तमिलनाडु की कपास मिलों में महत्त्वपूर्ण रहा है, खासकर औपनिवेशिक काल में। इस संदर्भ में, कई शोध पत्रों और अध्ययन ने मिलों में काम करनेवाले श्रमिकों के वेतन असमानताओं, श्रमिक आंदोलनों और औद्योगिक कार्यस्थलों पर पूंजीवादी प्रबंधन के प्रभावों पर ध्यान केंद्रित किया है। इन साहित्यिक समीक्षाओं ने यह भी दिखाया है कि इस दौर में मजदूरी से संबंधित संघर्ष भारतीय श्रमिक आंदोलनों की नींव रखने में सहायक थे।

एम वी शोभना वारियर, 2021, ने अपने शोध पत्र "तमिलनाडु में श्रमिक कपास मिलों के आंदोलन में लिंग, वर्ग और समुदाय, 1914–51" में अध्ययन किया एवं यह स्पश्ट किया कि 20वीं शताब्दी में महिलाएँ औद्योगिक श्रम शक्ति का एक बड़ा हिस्सा नहीं थीं, फिर भी तमिलनाडु में कपास मिलों में महिला श्रमिकों के एकीकरण का सर्वेक्षण किया गया है ताकि मिल श्रमिकों के बीच लिंग, समुदाय और वर्ग की धारणाओं के निर्माण का पता लगाया जा सके। श्रमिकों की विभिन्न समूह पहचानों के बीच विभिन्न अंतर्संबंधों और इंटरफेस की जाँच की गई है।[34]

राजनारायण चंदावरकर, 1994, ने "भारत में औद्योगिक पूंजीवाद की उत्पत्ति व्यापारिक रणनीतियाँ और बॉम्बे में श्रमिक वर्ग 1900-1940" इस पुस्तक में अध्ययन किया कि, बीसवीं सदी की शुरुआत में भारत के आर्थिक विकास में श्रम और पूंजी के बीच संबंधों का पहला बड़ा अध्ययन प्रस्तुत किया है। वह इस क्षेत्र में पूंजीवाद के उदयए सूती कपड़ा उद्योग के विकासए 1920 और 1930 के दशक में इसकी विशेष समस्याओं और मिल मालिकों और राज्यों की प्रतिक्रियाओं का पता लगाते हैं। लेखक यह भी जांचता है कि बॉम्बे में श्रम शक्ति का गठन कैसे हुआए इसकी ग्रामीण जड़ेंए शहरी नेटवर्कए औद्योगिक संगठन और जिस तरह से इसने पूंजीवादी रणनीतियों को आकार दिया।[35]

सेन (1997) ने "लिंग आधारित बहिष्कार बंगाल में घरेलूता और निर्भरता" के अध्ययन में लिखा कि बंगाल में लिंग, औद्योगिकीकरण और घरेलूपन के प्रतिच्छेदन की जांच करते हैं, और तर्क देते हैं कि महिलाओं के श्रम को सामाजिक–आर्थिक और वैचारिक दोनों प्रक्रियाओं के माध्यम से व्यवस्थित रूप से कम आंका गया है। पश्चिमी औद्योगिकीकरण के विपरीत, जिसने घरेलू उत्पादन को कारखाने के काम से अलग कर दिया, बंगाल के औद्योगिक विकास ने महिलाओं की अवैतनिक या कम वेतन वाली जीविका और घरेलू कार्यों में भागीदारी को बनाए रखा। महिलाओं के लिए औद्योगिक रोजगार, विशेष रूप से जूट क्षेत्र में, न्यूनतम था और मशीनीकरण और पितृसत्तात्मक श्रम बाजार प्रथाओं द्वारा और भी हाशि, पर डाल दिया गया था, जो महिलाओं के योगदान को पूरक के रूप में चित्रित करते थे। (सेन, 1997) के व्यापक ढाँचे के भीतर महिलाओं के हाशिए पर होने की स्थिति को दर्शाती है।[36]

बी. आर. पाटिल, 1984, ने अपने शोधपत्र "कोयंबटूर में कपड़ा उद्योग में अनुभागीय सौदेबाजी" में अनुभागीय स्तर पर सामूहिक सौदेबाजी का विश्लेषण किया है। उनके अनुसार, अनुभागीय सौदेबाजी एक ऐसा पैटर्न है जो उत्पादकता सौदेबाजी और गठबंधन सौदेबाजी के तत्वों को जोड़ता है ताकि युक्तिकरण और बहुल संघवाद की समस्याओं से निपटा जा सके जो कपड़ा और अन्य उद्योगों की विशेषता बनी हुई है जिसमें पूर्ण प्रौद्योगिकी और उत्पादन की विधि है।[37]

इमोन मर्फी, 1918–1939, ने इमोन मर्फी, यूनियन्स इन कॉन्फ्लिक्ट ए कम्पेरेटिव चार दक्षिण भारतीय कपड़ा केंद्रों का अध्ययन, में मद्रास प्रेसीडेंसी के प्रमुख कपड़ा शहरों में यूनियनीकरण की प्रक्रिया का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। उन्होंने दिखाया है कि कैसे जाति और समुदाय की एकजुटता ने मजदूर समुदाय के निर्माण में सक्रिय रूप से हस्तक्षेप किया।[38]

1908 में मद्रास में फैक्ट्री आयोग ने सी.बी. सिम्पसन और बिन्नी एंड कंपनी से युवा व्यक्तियों और महिलाओं को एक ही वर्ग में रखने की नीति के लिए मौन स्वीकृति पाई। इससे जो वैचारिक धारणा को बढ़ावा मिला वह यह थी कि पुरुषों की तुलना में महिलाओं की उत्पादन क्षमता कम है– जो कि अलग–अलग वेतन के लिए एक ठोस आधार प्रदान करता है। हालाँकि महिलाओं के लिए दोपहर के समय आराम का प्रावधान अनिवार्य कर दिया गया था, लेकिन फैक्ट्री निरीक्षण के दौरान छोड़कर इसका शायद ही कभी पालन किया जाता था।[39]

निष्कर्ष

औपनिवेशिक तमिलनाडु की कपास मिलों में वेतन विवाद और श्रमिकों के अधिकारों के लिए संघर्ष ने भारतीय श्रमिक इतिहास को गहरे रूप से प्रभावित किया। इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि औपनिवेशिक शासन के तहत श्रमिकों का शोषण एक सुनियोजित प्रक्रिया थी, जिसमें उनके श्रम का मूल्य अत्यधिक कम करके रखा जाता था। विशेष रूप से महिलाएँ और दलित समुदाय के श्रमिकों के साथ भेदभाव और असमानता को खुले तौर पर प्रोत्साहित किया गया था।

समान कार्य के लिए समान वेतन का सिद्धांत, जो कि एक न्यायसंगत और समान वेतन संरचना की ओर संकेत करता है, औपनिवेशिक काल में श्रमिकों के संघर्षों का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा था। इन मिलों में काम करने वाले श्रमिकों ने अपने अधिकारों के लिए संघर्ष किया, हालाँकि इन प्रयासों को औपनिवेशिक सरकार और पूंजीपतियों द्वारा बार–बार दबाने की कोशिश की गई। बावजूद इसके श्रमिक संगठनों और आंदोलनों ने समान कार्य के लिए समान वेतन की माँग को उठाया, जो श्रमिकों के अधिकारों की पहचान और उनका सम्मान बढ़ाने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम था।

तमिलनाडु की कपास मिलों में यह विवाद केवल मजदूरी तक सीमित नहीं था, बल्कि यह समाज के आर्थिक और सामाजिक असमानताओं, जातिवाद, लिंग भेदभाव, और औद्योगिकीकरण के दुष्परिणामों को भी उजागर करता था। श्रमिकों का यह संघर्ष न केवल औद्योगिक श्रमिकों के लिए बल्कि समग्र सामाजिक बदलाव के लिए भी एक प्रेरणा बन गया जिससे आज भी वेतन और श्रमिक अधिकारों की लड़ाई जारी है।

इस प्रकार इस शोध से यह निष्कर्ष निकलता है कि औपनिवेशिक तमिलनाडु की कपास मिलों में वेतन विवाद न केवल एक स्थानीय श्रमिक संघर्ष था, बल्कि यह भारतीय श्रमिक आंदोलनों और सामाजिक न्याय की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण मील का पत्थर था, जिसने समता और न्याय की माँग को प्रमुखता दी और भविष्य के श्रमिक आंदोलनों के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

संदर्भ सुची

1. Shyam Sundar KR. Industrial conflict in Tamil Nadu, 1960-80 [Ph.D. thesis]. Mumbai: University of Mumbai, Department of Economics, 1999.
2. Sharma GK. Labour movement in India (its past and present: from 1885 to 1980). New Delhi: Sterling Publishers Private Limited, 1982.
3. Shyam Sundar KR. State in industrial relations system in India: from corporatist to neo-liberal? Indian J Labour Econ,2005:48(4):917–38.
4. Vaidhyanathan S, Srividhya V. The Tamil Nadu Shops and Establishments Act, 1947 (with the Tamil Nadu Shops and Establishments Rules, 1948 and Short Notes of Cases). Chennai: Madras Book Agency: 2007.
5. Mathur A, Mishra SK. Inter-temporal wage and productivity variations across regions and industries in India. Indian J Labour Econ,2008:51(1):63–82.
6. Marx K. The Eighteenth Brumaire of Louis Bonaparte. Selected Works Vol. 1. Moscow, 1969, 398.
7. एलिजाबेथ फॉक्स, "प्लेसिंग वीमेन इन हिस्ट्री", एनएलआर, मई–जून, 1982। शी ने लिंग को विशिष्ट ऐतिहासिक संदर्भों में रखने की आवश्यकता पर ध्यान दिलाया है। जेन हम्फ्रीज, द ओरिजिन ऑफ द फैमिली बोर्न आउट आउट स्कारसिटी, नॉट वेल्थ", जेनेट सेयर्स–एड, एंगेल्स रिविजिटेड, लंदन, 1987 में। वह परिवार को एक ऐसी संरचना के रूप में देखती हैं जो न तो उत्पादन से और न ही प्रजनन से, बल्कि दोनों के बीच तनावपूर्ण इंटरफेस से उत्पन्न होती है।

8. Francesca Bettio. The Sexual Division of Labour. London, 1988, 20.
9. Francesca Bettio. The Sexual Division of Labour. London, 1988, 22.
10. Veronica Beechey. Unequal Work. London, 1987, 86; Janet Henshall Momsen. Women and Development in the Third World. London, 1991, 68.
11. जून हन्नम, "लिंगों के बीच मित्रता में प्रगति और सामाजिक उत्थान की आशा निहित है, वेस्ट राइडिंग में महिलाएँ, 1890–1914 11, जेन रैंडल द्वारा संपादित, समान या भिन्न, महिलाओं की राजनीति', लंदन, 1987, जान लैम्बर्ट्ज, "उन्नीसवीं सदी के अंग्रेजी कपास उद्योग में यौन उत्पीड़न", हिस्ट्री वर्कशॉप, वसंत 1985, पृ. 32–34.
12. Indian Factory Commission ReportL, 1908. London, 46-48.
13. Indian Factory Commission ReportL, 1908. London, 48-64.
14. Dev. Dept., G.O. 263(MS), 19-2-1923. Tamil Nadu Archives.
15. The Hindu. Madura Mill Dispute viewpoint of workers. Oct 6, 1937. Madras.
16. Public Works and Labour (MS), G.O.121L, 15-1-30. Tamil Nadu Archives.
17. Development Department (Conf~), G.O,1242(MS), 10-5-1939. Tamil Nadu Archives.
18. Department of Industry and Labour, L-1823(7), 1934. Tamil Nadu Archives.
19. Public Works and Labour Department, G.O.1192(L), 11-4-1930. Tamil Nadu Archives.
20. Dev. Dept. G.O. 2610, 5-7-1946: Dev. Dept. G.O.448, 21-2-1938. T.N.A. Also mentioned is an attempt by the management, during the Vysia Mill strike in Coimbatore, to compel workers of 1/2 and 3/4 side to do 3/4 and full side respectively, against which they protested.
21. Public Works and Labour Department, G.O.1041, 6-4-1942: Dev. Dept. G.O.448, 21-2-1938. Tamil Nadu Archives.
22. Department of Industry and Labour, L-878, 1931. Tamil Nadu Archives.
23. Development Department, G.O.2711, 6-12-1937. Tamil Nadu Archives.
24. Development Department, G.O.3189, 20-8-1946. Tamil Nadu Archives.
25. Development Department, G.O.2059, 23-8-1938. Tamil Nadu Archives.
26. Public Works and Labour Department, G.O.804, 16-3-1942. Tamil Nadu Archives.
27. Dept. of Industry and Labour, L-878(14), 1928, N.A.I.: Dev. G.O.2059, 23-8-1938. Tamil Nadu Archives.
28. Indian Factory Commission Report, London, 1908, 46.
29. Puddmaippithan Padaipagal, V.1. Madras: 1988.
30. Public Works and Labour Department, G.O.804, 16-3-1942. Tamil Nadu Archives.
31. Royal Commission on Labour, Vol. VII, Part II. London: 1931, 148.
32. Development Department, G.O.1384, 30-5-1938: Dev. Dept. G.O.733, 25-3-1939. Tamil Nadu Archives.
33. Development Department, G.O.2059, 23-8-1938. Tamil Nadu Archives.
34. Warrier MVS. Gender, Class and Community in Mobilisation of Labour Cotton Mills in Tamil Nadu, 1914–51. Economic & Political Weekly, 2021, 56(12).
35. Chandavarkar R. The Origins of Industrial Capitalism in India: Business Strategies and the Working Classes in Bombay, 1900-1940. United Kingdom: Cambridge University Press: 1994.
36. Sen S. Gendered Exclusion: Domesticity and Dependence in Bengal. Int Rev Soc Hist,1997:42(S5):65–86. doi:10.1017/S0020859000114798.
37. Patil BR. Sectionalised Bargaining in Textile Industry in Coimbatore. Indian J Ind Relat,1984:3:44-54.
38. Murphy E. Unions in Conflict: A Comparative Study of Four South Indian Textile Centres, 1918-1939. Delhi: 1981.
39. The Hindu. June 28, 1918. Hindu Library, Madras. This was the case at the Choolai mills in Madras.